R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

मूल्य-7 रुपये, वर्ष-23, अङ्क-6 जून 2023 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

ऐतिहासिक नगरी हस्तिनापुर में तीर्थधाम चिदायतन का होगा भव्य वेदी शिलान्यास महोत्सव

(दिनांक 14 नवम्बर से 16 नवम्बर 2023 तक)

विशिष्ट महानुभावों का आगमन

डॉ. वीरसागर जैन दिल्ली, का स्वागत करते पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, तथा मङ्गलार्थियों को अनेकान्त व स्याद्वाद का स्वरूप समझाते हुए।

श्रीमती बीना जैन देहरादून मङ्गलार्थियों को द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप का अध्यापन कराते हुए।

पण्डित ऋषभ जैन, उस्मानपुर, दिल्ली ने मङ्गलार्थियों के साथ ग्वालियर शिविर के लिए प्रस्थान किया।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-23, अङ्क-6 (वी.नि.सं. 2549; वि.सं. 2080) जून 2023

दिव्य ध्वनि वीरा खिराई.....

दिव्य ध्वनि वीरा खिराई आज शुभ दिन,
धन्य धन्य सावन की पहली है एकम।
आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं, आपूर्ण माद्यन्त विमुक्त-मेकम॥
दिव्य ध्वनि वीरा...

वैशाख दशमी को घातिया खिपाये, मेरे प्रभु विपुलाचल पर आये,
क्षण में लोकालोक लखाये, किन्तु न प्रभु उपदेश सुनाये,
काललब्धि वाणी की आयी नहीं उस दिन॥
धन्य धन्य सावन की पहली है एकम....

इन्द्र अवधिज्ञान उपयोग लगाये, समवसरण में गणधर ना पाये,
इन्द्रभूति गौतम में योग्यता लखाये, वीर प्रभु के दर्शन को आये,
काललब्धि लेकर के आई आज गौतम॥
धन्य धन्य सावन की पहली है एकम....

मेरे प्रभु ओंकार ध्वनि को खिराये, गौतम द्वादश अंग रचाये,
उत्पाद व्यय ध्रौव्य सत समझाये, तन चेतन भिन्न भिन्न बताये,
भेदविज्ञान सुहायो आज शुभ दिन॥
धन्य धन्य सावन की पहली है एकम....

य एव मुक्त्वा नय पक्षपातं, स्वरूप गुप्ता निवसन्ति नित्यं,
विकल्प जाल च्युत शांत चित्ता, स्तयेव साक्षातामृतं पिबन्ति,
स्वानुभूति की कला सिखाई आज शुभ दिन॥
धन्य धन्य सावन की पहली है एकम....

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि०वि०

सह सम्पादक
पण्डित सुधीर शास्त्री, मङ्गलायतन
पण्डित अभिषेक शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, मङ्गलायतन

निवेदन

अगर आपको यह पत्रिका लगातार प्राप्त हो रही है तो कृपया सूचित करें। जिससे आपको पत्रिका लगातार भेजते रहें। अगर आप हमें सूचित नहीं करते हैं तो हम समझेंगे कि आपको पत्रिका प्राप्त नहीं हो रही तथा आपको आवश्यकता भी नहीं है। अतः आगे से पत्रिका आपको नहीं भेजी जायेगी।

सम्पर्कसूत्र–
पण्डित अभिषेक शास्त्री, मङ्गलायतन
9997996346 (whatsapp)
Email : info@mangalayatan.com

शुल्क :
एक प्रति : 07.00 ₹
आजीवन (15 वर्ष) : 1000.00 ₹

क्या – कहाँ

देशव्रतोद्योतनम्	5
श्री समयसार नाटक	11
स्वानुभूतिदर्शन	22
आलेख	24
प्रेरक प्रसंग	27
जिस प्रकार उसी प्रकार	28
आचार्य परिचय	29
समाचार-दर्शन	30

श्री पद्मनंदी आचार्य कृत श्री पद्मनंदी पंचविंशतिका के
देशव्रतोद्यन नामक अधिकार पर सत्पुरुषश्री कानजीस्वामी का प्रवचन

देशव्रतोद्योतनम्

(प्र० भाद्रपद सुदी 3, शनिवार, ता० 20-8-55)

गाथा-१७

ये मोक्षं प्रति नोद्यताः सुनृभवे लब्धेऽपि दुर्बुद्धयः।
ते तिष्ठंति गृहे न दानमिह चेत्तन्मोहपाशो दृढ़॥
मत्वेदं गृहिणा यथार्द्धि विविधं दानं सदा दीयतां।
तत्संसारसरित्पतिप्रतरणे पोतायते निश्चितम्॥१७॥

संसार से पार होने के लिए दान जहाज समान है, इसलिए यथाशक्ति दान देना चाहिए।

आचार्य कहते हैं कि इस मनुष्यभव का मिलना अनन्त काल में दुर्लभ है। जैसे वृक्ष को जलाकर राख कर दी जाये और उस को नदी में बहा दें तो उस राख से वृक्ष उत्पन्न होने में बहुत समय लगे, उसी प्रकार यह मनुष्यभव दुर्लभ है, किन्तु इसे पाकर भी यह जीव, विकार से छूटने का प्रयत्न नहीं करता और घर में पाप कार्य किया करता है। जो पुरुषार्थ द्वारा सच्ची समझपूर्वक मुनि नहीं बने, वे मूर्ख हैं। अरे रे! मैं आत्मा हूँ, ऐसा विचार नहीं करता। आग लगने पर कुआं खोदना व्यर्थ है, इसलिए समय रहते विचार करना चाहिए। जिसे दान धर्म करने की रुचि नहीं, उसे मोह ने बाँध रखा है। यहाँ 'मोह' शब्द से जड़ मोह कर्म नहीं समझना चाहिए, आत्मा अन्तरंग मोह भाव से बँधा हुआ है ऐसा समझना चाहिए, और अपनी शक्ति अनुसार दान करना चाहिए।

धर्मी जीव महापवित्र मुनियों को दान देते हैं किन्तु उन्हें फल की इच्छा नहीं है। जो दान नहीं देता, उसके घर का नाश-अन्त हो गया है। दूसरे देते हैं या नहीं—इसको नहीं देखकर अपनी शक्ति के अनुसार दान देना चाहिए। एक राजा ने एक लाख रुपया दान दिया और पीछे एक गरीब आदमी ने

अपनी एकमात्र सम्पत्ति-साढ़े तीन आने मात्र दान दी। भले ही उसने साढ़े तीन आने दिये किन्तु उसकी तो सारी सम्पत्ति वही थी, इसलिए राजा ने उस गरीब का नाम सर्वप्रथम लिखाया। इसलिए भव्य जीवों को अनेक प्रकार से धर्म की वृद्धि के लिए दान देना चाहिए। जिसे धर्म के प्रति प्रेम हुआ हो, उसे धर्म की वृद्धि करने के लिए धन का उपयोग करना चाहिए क्योंकि उत्तम पात्र को दिया हुआ दान, संसाररूपी समुद्र में जहाज के समान है। संसार का अभाव करने की दृष्टिवाले को संसार का अभाव किए हुए देवादिक के प्रति प्रभावना का भाव आए बिना नहीं रहता। कोई अपनी मान-प्रतिष्ठा के लिए रुपया देता है तो वह आत्मा के लिए नहीं देता। अत: राग कम करने के लिए देव-गुरु-शास्त्रादि के हेतु दान देना चाहिए।

असली दाता सांसारिक कार्यों में मितव्ययता करता है किन्तु धार्मिक कार्यों में अपनी शक्ति नहीं छिपाता।

भावार्थ—दुर्लभ मनुष्य भव तथा ऊँचा कुल पाकर भव्य जीवों को मोक्ष के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जो कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानता है, वह मूढ़ है। भव्य जीवों को मोक्ष के लिए प्रयत्न करना चाहिए। अगर ऐसा नहीं कर सके तो अपनी शक्ति अनुसार दान देना चाहिए। वीतरागभाव की दृष्टिवाला केवलज्ञान के सन्मुख होता है। दान के बिना जीवन व्यर्थ नहीं करना चाहिए। सांसारिक कार्यों में मितव्ययता करनी चाहिए किन्तु धार्मिक कार्यों में मितव्ययता न रखकर उदारतापूर्वक देना चाहिए।

एक आदमी के पास कोई चन्दा लेने गया। वह बीड़ी जलाकर आधी जली हुई माचिस की सींक बचाकर रख लेता था, वह इतना मितव्ययी था, इसलिए चन्दा लेने गया, उसे ज्यादा मिलने की आशा नहीं थी। उस आदमी ने पूछा 'कि तुम मुझसे कितनी आशा रखते हो ?'

जवाब—जितनी आपकी इच्छा हो, उतना दे दीजिए। उस आदमी ने उसी समय दस हजार रुपया दे दिया; जबकि जाने वाला दो सौ की आशा से गया था किन्तु जब उसने दस हजार दिया, तब वह चकित हो गया। तो उस

व्यक्ति ने खुलासा किया कि सांसारिक कार्यों में किफायत करनी चाहिए, किन्तु धार्मिक कार्यों में नहीं। धार्मिक कार्यों के लिए शक्ति अनुसार दान देना चाहिए, अगर कोई नहीं दे तो उसे धर्म के प्रति अनुराग नहीं है।

'दाता छिपै नहीं घर याचक आए।' धार्मिक पुस्तकें छपाना आदि प्रभावना के कार्यों में दाता छिपता नहीं। 'रण चढ़े राजपूत नहीं छिपता।' इसी प्रकार दाता धार्मिक कार्यों के प्रसंग में छिपा हुआ नहीं रहता। धर्मात्मा शक्ति अनुसार पैसे का सदुपयोग करता है।

गाथा-१८

यैर्नित्यं न विलोक्यते जिनपतिर्नस्मर्यते नार्च्यते।
न स्तूयेत न दीयते मुनिजने दानं च भक्त्या परम्॥
सामर्थ्ये सति तद्गृहाश्रमपदं पाषाणनावासमं।
तत्रस्था भवसागरेऽतिविषमे मज्जन्ति नश्यन्ति च॥१८॥

जो मनुष्य लक्ष्मी आदि का संयोग होते हुए भी भगवान के दर्शन नहीं करता और लोभी आढ़तिया तथा स्त्री-पुत्रों के दर्शन करता है, वह संसार में डूबता है।

'जिन प्रतिमा जिनसारखी भाखी आगम मांय।'

ऐसा पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं। जो जीव, त्रिलोकीनाथ परमात्मा के दर्शन नहीं करता, वह पापी है। व्यापारी सवेरे-सवेरे डाक की प्रतीक्षा करता है किन्तु भगवान के दर्शन नहीं करता, उनका गृहस्थाश्रम पत्थर की नाव के समान है। वह प्रात: उठकर समाचार पत्र पढ़ता है, किन्तु आत्मप्रेमी भगवान का स्मरण करता है। विवाह आदि कार्यों में पुत्री-पुत्र न आ सके तो गृहस्थी जीव याद करता है कि बीमार हो गया होगा। इसलिए लड़की नहीं आ सकी—'मेरी बेटी नहीं आई' ऐसे याद करता है। इसी प्रकार धर्मात्मा नियमितरूप से भगवान के दर्शन करता है। जो दर्शन, पूजा, गुरुसेवा, दान नहीं करता, उसका गृहस्थाश्रम पत्थर की नाव के समान है; इसलिए देवपूजा, गुरुसेवा, दान आदि नित्य करने चाहिए।

जो जिनेन्द्र देव के दर्शन तथा दानादि नहीं करता, वह पत्थर की नाव के समान डूब जाता है।

'गृहस्थियों के व्रत का उद्योतन कैसे हो ?' यह प्रकरण चल रहा है। जो गृहस्थ होते हुए भी जिनेन्द्र भगवान के दर्शन नहीं करता, वह श्रावक नहीं है। जिसे आत्मा के ज्ञानस्वभाव की प्रीति और रुचि हो गई है, उसे भगवान की अविद्यमानता में उनकी प्रतिमा के दर्शन करने का भाव आए बिना नहीं रहता। भगवान के दर्शन न करनेवाला गृहस्थ, संसाररूपी समुद्र में डूबता है। जिनके आत्मा के ज्ञानभावपूर्वक अन्तरंग निर्ग्रन्थता प्रकट हुई है और शरीर पर वस्त्रादि नहीं है—ऐसे मुनि का यह कथन है कि गृहस्थ कैसा होता है ? यह मार्ग अनादिकालीन है, शरीर में रोग हो या उसकी स्थिति खराब हो तो अलग बात है, किन्तु शरीर के अच्छा होते हुए भी जो भगवान की प्रतिमा का दर्शन आदि नहीं करता या कुदेवादि को मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है।

'जिनप्रतिमा जिन सारखी' ऐसा ज्ञानी कहते हैं। जिन्हें पवित्र आत्मा की दृष्टि प्राप्त हो गई है, वे भगवान की मूर्ति पर उनका निक्षेप करते हैं। भगवान वीतराग निर्ग्रन्थस्वरूप हैं, उन्हें पूर्ण केवलज्ञान प्रगट हुआ है। प्रातःकाल उनके दर्शन कर पूजा करने का भाव धर्मात्मा को आए बिना नहीं रहता। जिसे ऐसा भाव नहीं आता, वह धर्मी नहीं है, उसके सामायिक आदि व्यर्थ हैं। जो सर्वज्ञ के अनन्त गुणों का स्तवन नहीं करता, वह धर्मी नहीं है। अहो ! धन्य अवतार ! आपने अन्तिम शरीर धारण कर केवलज्ञान पाया; इस प्रकार बहुमान-विनय द्वारा जो उनकी ऐसी स्तुति नहीं करता या निर्ग्रन्थ साधु को आहारदान करने का भाव नहीं करता, उस गृहस्थी का गृहस्थाश्रम पत्थर की नाव के समान है। सर्वज्ञ के सनातन मार्ग में, जो दृष्टिपूर्वक दर्शन, पूजा नहीं करता, वह श्रावक नहीं कहलाता। वह गृहस्थ संसार की चौरासी लाख योनियों में भटकता है। वह अकेला ही पाप करता है और अकेला ही उनका फल भोगता है। वह खाने, पीने, कमाने में लीन रहता है और उसके

फलस्वरूप चार गतियों में भ्रमण करता है और अन्त में निगोद में भटकता है 'णमो लोए सव्वसाहूणं' इसमें से 'लोए' शब्द तो पाँचों पदों में लागू होता है। मुनि बताते हैं कि साधु वह है, जिसे आत्मा का भान है, निर्ग्रन्थदशा है। ऐसों के अतिरिक्त जो अन्य को साधु मानता है, वह संसार में भटक कर निगोद में जाएगा। जीव ने अनन्त काल से सत्य बात नहीं सुनी। आचार्य भगवान कहते हैं कि जो अपने धन को पवित्र करना चाहते हैं, वे शुभरागपूर्वक देव-गुरु-शास्त्र या उनकी प्रभावना के लिए अपने धन का उपयोग करते हैं, उन्हीं को वास्तव में पवित्र करना है। अत: जिनेन्द्र देव की पूजा, स्तुति आदि कार्य तथा उत्तमादि पात्रों को दान अवश्य करना चाहिए।

आचार्य, दाता की महिमा बताते हैं:—

गाथा-१९

चिन्तारत्नसुरद्रुकामसुरिभस्पर्शोपलाघा भुवि।
ख्याता एव परोपकारकरणे दृष्टा न ते केनचित्॥
तैरत्रोपकृतं न केपुचिदपि प्रायो न सम्भाव्यते।
तत्कार्याणि पुनः सदैव विदधद्दाता परं दृश्यते॥१९॥

जिनशासन की प्रभावना में दान देनेवाला चिन्तामणि रत्न समान है:—

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने इस शास्त्र को 'वन शास्त्र' कहा है। सर्वज्ञ ने जैसा देखा, वैसा ही इसमें वर्णन किया है। इन्द्रिय दमन करके जो इस शास्त्र का अध्ययन करे तो उसके लिए यह अमृततुल्य है।

चिन्तामणि रत्न की देव सेवा करते हैं, जिसके चिन्तवनमात्र से मकान आदि बन जाते हैं किन्तु क्या उससे धर्म हो सकता है? नहीं। कल्पवृक्ष से मनुष्य की आवश्यकता की वस्तुएँ मिल जाती हैं। कामधेनु गाय भी इच्छा करते ही दूध दे देती है, इन सबसे सांसारिक वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं, किन्तु केवलज्ञान या सम्यक्ज्ञान नहीं मिलता। पारसमणि के स्पर्श मात्र से लोहा, सोना बन जाता है। ऐसे अनेक उपकारी पदार्थ संसार में हैं—ऐसा सुना जाता

है, किन्तु साक्षात् उपकार करते नहीं देखा तथा कोई किसी का उपकार करे, यह सम्भव नहीं है, किन्तु चिन्तामणिरत्न आदि के कार्य को करनेवाले दाता अवश्य देखने में आते हैं। **आत्मप्रेमसहित** देव-गुरु-शास्त्र की शोभावृद्धि के लिए मनवांछित दान देनेवाला दाता चिन्तामणि समान है। शास्त्र में लिखा है कि नवीन कमाई में से चतुर्थांश देव-गुरु-शास्त्र की प्रभावना के लिए दिया जाना चाहिए। पद्मनन्दि आचार्य हजार वर्ष पहले हुए हैं, दिगम्बर जैनधर्म के स्तम्भ हैं, परम्परा की रीति शास्त्र में बतलाते हैं कि ऐसे दाता देखने में आते हैं। लड़की के विवाह में दहेज में रुचिपूर्वक सोना, कपड़ा आदि दिया जाता है; उसी प्रकार धार्मिक कार्यों में खर्च करना चाहिए। जिसे धर्म के प्रति प्रेम है और धर्मार्थ धन देता है, उसे चिन्तामणि कहते हैं, उसे कल्पवृक्ष कहते हैं, उसे कामधेनु, पारस पत्थर कहते हैं। जिन्हें आत्मा का भान है किन्तु वर्तमान में केवलज्ञान नहीं हुआ है—ऐसे धर्मात्मा दान करते हैं तो उन्हें चिन्तामणि समान कहा है। आत्मा की **लगनवाले** को धर्म प्रभावना की लगन हुए बिना नहीं रहती, आजकल कुछ लोग तो सत्य का विरोध करते हैं। इस सत्य बात के मानने से सम्प्रदाय में, कुटुम्ब में बाधा आयेगी, ऐसा माननेवाले धर्म के योग्य नहीं हैं। इस प्रकार इस गाथा में आचार्य ने दाता को चिन्तामणि आदि कहा है।

क्रमशः

साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 14, अंक 4

जुलाई 2023 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

2 जुलाई – आषाढ़ शुक्ल **चतुर्दशी**
3 जुलाई – अष्टाह्निका व्रत पूर्ण
4 जुलाई – श्रावण कृष्ण एकम
श्री वीर शासन जयन्ती
5 जुलाई – श्रावण कृष्ण द्वितीया, तृतीया
श्री मुनिसुव्रतनाथ गर्भ कल्याणक
10 जुलाई – श्रावण कृष्ण **अष्टमी**
12 जुलाई – श्रावण कृष्ण दशमी
श्री कुंथुनाथ गर्भ कल्याणक
16 जुलाई – श्रावण कृष्ण **चतुर्दशी**
26 जुलाई – श्रावण शुक्ल **अष्टमी**
31 जुलाई – श्रावण शुक्ल त्रयोदशी,
/ **चतुर्दशी**

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार प्रवचन

यह अजीव अधिकारकौ, प्रगट बखानौ मर्म।
अब सुनु जीव अजीवके, करता किरिया कर्म॥1॥

अर्थः- यह अजीव अधिकार का रहस्य स्पष्ट वर्णन किया, अब जीव-अजीव के कर्त्ता क्रिया कर्म को सुनो॥1॥

काव्य - 1 पर प्रवचन

यह अजीव-अधिकार के रहस्य का स्पष्ट वर्णन किया। अब जीव-अजीव के कर्त्ता, क्रिया और कर्म सुनों। जीव-अजीव की लक्षण द्वारा भिन्नता तो बताई। अब जीव की क्रिया, उसका कर्त्ता और उसका कार्य क्या है -यह बताते हैं। जड़ की और राग की क्रिया जीव की नहीं है और ज्ञान की क्रिया अजीव की नहीं है -यह सब इसमें आयेगा॥1॥

अब कहते हैं कि भेदविज्ञान में जीव कर्म का कर्त्ता नहीं है, निज स्वभाव का कर्त्ता है।

प्रथम अग्यानी जीव कहै मैं सदीव एक,
दूसरौ न और मैं ही करता करमकौ।
अंतर-विवेक आयौ आपा-पर-भेद पायौ,
भयौ बोध गयौ मिटि भारत भरमकौ।
भासे छहौं दरबके गुन परजाय सब,
नासे दुख लख्यौ मुख पूरन परमकौ।
करमकौ करतार मान्यौ पुद्गल पिंड,
आप करतार भयौ आतम धरमकौ॥2॥

अर्थः- जीव पहले अज्ञान की दशा में कहता था कि मैं सदैव अकेला ही कर्म का कर्त्ता हूँ दूसरा कोई नहीं है; परन्तु जब अन्तरंग में विवेक हुआ और स्वपर का भेद समझा, तब सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ, भारी भूल मिट गई,

छहों द्रव्य, गुण, पर्याय सहित ज्ञात होने लगे, सब दु:ख नष्ट हो गये और पूर्ण परमात्मा का स्वरूप दिखने लगा, पुद्गल पिण्ड को कर्म का कर्त्ता माना, आप स्वभाव का कर्त्ता हुआ।

भावार्थ:- सम्यग्ज्ञान होने पर जीव अपने को स्वभाव का कर्त्ता और कर्म का अकर्त्ता जानने लगता है ॥2॥ पुन:

काव्य - 2 पर प्रवचन

अज्ञानी कहता है कि शरीर, राग और आत्मा सब एक ही है। शरीर और आत्मा भिन्न नहीं है, राग और आत्मा भिन्न नहीं है। इसलिए जड़ कर्म का कर्त्ता भी मैं हूँ और पुण्य-पाप भाव का कर्त्ता भी मैं ही हूँ। स्वयं को जिसका कर्त्ता माना है, उसमें एकता तो पहले से मानी ही होती है; क्योंकि एकत्व माने बिना अपने को कर्त्ता नहीं माना जा सकता है।

संस्कृत श्लोक में भी 'एक कर्त्ता' शब्द है, उसका अर्थ यह है कि ज्ञानानन्द स्वरूप मैं हूँ, पुण्य-पाप स्वरूप भी मैं हूँ, कर्म और शरीररूप भी मैं हूँ- सब एक ही है- ऐसा मिथ्यादृष्टि भ्रम से मानता है। इस कारण वह मैं दया, दान, व्रतादि के विकल्प का कर्त्ता हूँ- ऐसा मानता है। राग की और आत्मा की क्रिया भिन्न है- ऐसा जो नहीं जानता, (वह) राग की क्रिया का कर्त्ता मैं ही हूँ, अन्य कोई नहीं- ऐसा मानता है।

दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प उत्पन्न होते हैं, उनका कर्त्ता 'मैं ही हूँ', क्योंकि राग और मैं एक ही हैं। जो एक हो, वही उसका कर्त्ता होता है। मैं अन्य का कर्त्ता नहीं होता; परन्तु राग और आत्मा एक ही है, इसलिए मैं ही राग का कर्ता हूँ इस प्रकार अज्ञानी अज्ञानभाव से राग का कर्त्ता होता है। उसको पता नहीं है कि विकल्प मेरी जाति का नहीं है, वह तो कुजात है; उसका कार्य मेरा नहीं है। अज्ञानी दो तत्त्वों को एक मानता है; परन्तु दो तत्त्व एक नहीं होते। दुकान, ऑफिस, घर या कारखानों के माल का कर्त्ता तो मैं नहीं, परन्तु राग की क्रिया का कर्त्ता भी मैं नहीं हूँ- ऐसा यहाँ कहना है।

जहाँ तक दृष्टि राग और विकल्प पर पड़ी है, वहाँ तक अज्ञानी राग और

आत्मा तथा कर्म को एक ही मानता है। जो मेरा है, उसका कार्य भी मेरा ही होगा न! ऐसा अज्ञानी मानता है। देखो, महाव्रतरूप विकल्प का कार्य मेरा है– ऐसा माननेवाला अज्ञानी है, यह बात इसमें आ जाती है। ज्ञानस्वरूप प्रभु में वृत्ति का उत्थान हो, वह इसकी जाति नहीं है प्रभु! जो अपना कार्य हो, वह अपने से भिन्न नहीं पड़ सकता।

मेरी प्रतिष्ठा –मेरी आबरू बनाये रखूँ– ऐसा अज्ञानी को होता है वह किसलिए? कि वह आबरू को अपना कार्य मानता है। इस कारण मिथ्यादृष्टि को उसे बनाये रखने की वृत्ति होती है। जिसकी दो भावों में एकपने की मान्यता है, वही 'मैं उसको करता हूँ' ऐसा मानता है।

'अंतर विवेक आयौ' अरे! मैं तो ज्ञायकस्वरूप आत्मा हूँ– ऐसा विवेक आया। वह किसको आता है? कि जो धैर्यवान होकर आत्मा और पर का भेद जानता है, उसको ऐसा विवेक प्रकट होता है। उसे स्व और पर भिन्न ज्ञात होते हैं। उसको सम्यक् बोध प्रकट होता है। इसलिए कहा है कि 'धर्म विवेक से नीपजे, जो करिये तो थाय।' राग के विकल्प से भिन्न पड़कर चैतन्य में एकाग्र होने पर स्व–पर का भेदज्ञान हो जाता है कि मैं तो राग से भिन्न चैतन्य हूँ, राग का कार्य मेरा नहीं है।

आत्मा वीतरागस्वरूप चैतन्य है और राग है, वह तो मेल है– विकार है– ऐसा दोनों के बीच भेद जानने पर बोध प्रकट होता है– भेदज्ञान होता है, वहाँ महाभूल मिट जाती है। भ्रमणा की भूल महाभूल है, उसका नाश होता है। प्रभु! आत्मा ज्ञानसूर्य है और राग तो मलिन है। इन्हें भिन्न करने में बहुत पुरुषार्थ है। यह कोई कायर का काम नहीं है। अपना वीर्य जो कि राग में एकता मानकर पड़ा था, वहाँ अब विवेक आया कि मैं तो आनन्दस्वरूप जलहल चैतन्यज्योति हूँ, यह राग मैं नही हूँ। जहाँ ऐसा भेदज्ञान हुआ, वहाँ **'मिटि भारत भरमकौ'** भ्रमणा का महाभार उतर जाता है –मिट जाता है। इसलिए सर्वप्रथम यह भार उतारने का कार्य करने योग्य है।

जो बाहर की वस्तु लेना चाहता है, बाहर से बड़प्पन लेना चाहता है,

उसका अर्थ ही यह है कि वह बाहर की चीज को और अपने को एक मानता है। यह प्रत्यक्ष उसके लक्षणों से ख्याल में आता है, वह तो अज्ञानी है। अब जिसको आत्मा और रागादि की भिन्नता का बोध हुआ, उसके सिर से भ्रम का महाभार उतर जाता है। राग से आत्मा का ज्ञान भिन्न है –ऐसा ज्ञान प्रकट होता है और ध्रुववस्तु तो त्रिकाल जैसी है वैसी पड़ी ही है।

लोग इस मूल बात को ग्रहण नहीं करते, इसलिए भ्रमणा में दौड़ पड़ते हैं। अपनी चैतन्यबाजी तो ज्ञान और आनन्द में है, राग में आत्मा नहीं है। जिसमें अपना अस्तित्व नहीं है, उससे पृथक् होकर जिसमें अपना अस्तित्व है, उसको पकड़े तो वहाँ भ्रम मिट जाता है। अनादि का भ्रम लगा था, वह मिट जाता है। सम्यक्बोध प्रकट होता है कि छहों द्रव्य भिन्न हैं और उनके गुण–पर्याय भी भिन्न–भिन्न हैं। सबके गुण–पर्याय सब में हैं। परमाणु द्रव्य है, स्पर्श–रस–गन्धादि उसके गुण हैं और चलना बोलना आदि उसकी अवस्था है। उसी प्रकार जीव एक द्रव्य है; उसके ज्ञान, दर्शन, सुखादि गुण हैं और ज्ञान–दर्शनादि की निर्मल अवस्था, वह जीव की पर्याय है। इस प्रकार जीव और पुद्गल अत्यन्त भिन्न दो द्रव्य हैं।

लोगों में भेदज्ञानरूप धर्म की बात सुनना भी कठिन पड़े– ऐसा स्थिति है। दया पालो, व्रत करो, तप करो– यही धर्म है– ऐसा वे मान बैठे हैं। इतने मनुष्यों को मांस छुड़ाया, इतने मनुष्य सामायिक करके बैठे, इतने दिन धर्म में व्यतीत किये– इस प्रकार राग के कार्यों को ही धर्म मानते हैं। वे अन्धकार में प्रकाश माननेवाले अज्ञानी हैं।

पर से और राग से भिन्न भगवान आत्मा ज्ञान में आये बिना भ्रम नहीं मिटता। भ्रम मिटे तो दिखे कि छहों द्रव्य अपना–अपना कार्य कर रहे हैं। शरीर शरीर का काम करता है, कर्म कर्म के कारण बँधते हैं और छूटते हैं तथा जीव अपने ज्ञान स्वभाव को करता है। ऐसा कर्त्ता–कर्म का स्वरूप है। कर्त्ता–कर्म की इतनी स्पष्टता समयसार जैसी अन्यत्र कहीं नहीं आती।

'नासे दुःख लख्यौ मुख पूरन परम कौ'–भेदज्ञान होने पर अपने पूर्ण

परमात्मा का मुख देखने को मिला और दु:ख तो सब नष्ट हो गये। आनन्द-घन चैतन्य को परखा, उसमें पूर्ण परमात्मा का स्वरूप दिखने लगा, वहाँ समस्त अज्ञानजनित दु:ख मिट गये।

'करम कौ करतार मान्यौ पुद्गल पिंड'– मैं तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ। जब ऐसा विवेक जगा, तब वस्तुत: कर्म का कर्त्ता पुद्गल है, राग का आचरण भी जड़ का है, मेरा नहीं। मैं तो अपने स्वभाव का कर्त्ता हूँ- ऐसा ज्ञानी जानने लगता है।

अज्ञानी तो व्रत पाले, दया करे, आहार को छोड़े; परन्तु वह वस्तु के स्वरूप को और उसकी क्रिया को नहीं जानता। भगवान आत्मा देह की क्रिया के करने या छोड़ने से रहित है, यह तो अज्ञानी जानता नहीं और क्रिया का भार सिर पर लेकर घूमता है और ऊपर से वाद-विवाद करता है; परन्तु विवेक जागृत नहीं करता है।

'आप करतार भयौ आतमधरम कौ'– ऐसा कहा, उसमें यह बात भी आ गई कि ज्ञानी राग का कर्त्ता नहीं होता। ज्ञानी अपने आत्मा के धरम को अर्थात् कार्य को करता है; परन्तु राग को अथवा देह की क्रिया को नहीं करता है। धर्मी अपने ज्ञान-दर्शन, आनन्द का कर्त्ता होता है, यह धर्म है और यही विवेक ज्ञान है।

लोग संसार की पढ़ाई में समय गँवाते हैं, परन्तु इस अन्तर के- भेदज्ञान के अभ्यास के लिए समय नहीं निकालते। स्त्री-पुत्रादि के लिए और मान-प्रतिष्ठा के लिये मजदूरी कर-करके मर जाते हैं; परन्तु आत्मा के अभ्यास के लिए तो समय नहीं मिलता और यों ही भव हार जाते हैं। जो अपनी वस्तु नहीं है, उसके लिए तो जीवन लगा देता है और अपने कार्य के लिए इसको समय नहीं है।

जो भेदज्ञान का अभ्यास करके अपने ज्ञानानन्द का कर्त्ता होता है, वह धर्म का कर्त्ता है। ऐसा धर्मी जीव अपने को स्वभाव का कर्त्ता और कर्म का अकर्त्ता जानने लगता है।

जाही समै जीव देहबुद्धि कौ विकार तजै,
वेदत सरूप निज भेदत भरमकौं।
महा परचंड मति मंडन अखंड रस,
अनुभौ अभ्यासि परगासत परमकौं ।
ताही समै घटमैं न रहै विपरीत भाव,
जैसैं तम नासै भानु प्रगटि धरमकौं।
ऐसी दसा आवै जब साधक कहावै तब,
करता ह्वै कैसे करै पुद्गल करमकौ॥3॥

अर्थः- जब जीव शरीर से अहंबुद्धि का विकार छोड़ देता है और मिथ्यामति नष्ट करके निजस्वरूप का स्वाद लेता है तथा अत्यन्त तेज बुद्धि को सुशोभित करनेवाले पूर्ण रस भरे अनुभव के अभ्यास से परमात्मा का प्रकाश करता है, तब सूर्य के उदय से नष्ट हुए अन्धकार के समान कर्म के कर्त्तापने का विपरीत भाव हृदय में नहीं रहता। ऐसी दशा प्राप्त होने पर वह आत्म-स्वभाव का साधक होता है। तब पौद्गलिक कर्मों को कर्त्ता होकर कैसे करेगा ? अर्थात् नहीं करेगा ॥3॥

काव्य - 3 पर प्रवचन

'जाहीं समै जीव देहबुद्धि कौ विकार तजैं, - जब जीव देह और विकार मैं हूँ- ऐसी बुद्धि को तजता है -ऐसा कहा है; कर्म घटे अथवा कर्म का अभाव होवे तो ऐसा विवेक आता है -ऐसा नहीं है; परन्तु जब जीव पुरुषार्थ से देहबुद्धि को तजता है, तब उसको सम्यक् विवेक प्रकट होता है, भ्रम का नाश होता है और अपना आनन्दस्वरूप प्रत्यक्ष वेदन में आता है। इसका नाम भेदज्ञान और इसी का नाम सम्यग्ज्ञान है। अनादि से पुण्य-पाप का वेदन है, वह भ्रम का अर्थात् मिथ्यात्व का वेदन है। जीव को अज्ञान में भी स्त्री के शरीर का, दाल, भात, सब्जी का अथवा मकान का वेदन नहीं है। इसको वेदन तो हर्ष-शोक और राग-द्वेष के परिणाम का है, परद्रव्य का वेदन नहीं।

जीव ने अनन्त काल में नरक-निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक

विकार का ही वेदन किया है, संयोग का नहीं। शुभाशुभ विकारीभाव का ही वेदन किया है। पुण्य-पापभाव का कर्त्ता होता है और उन्हें ही भोगता है। भाव का ही वेदन है, वस्तु का वेदन नहीं। जो राग-द्वेष, हर्ष-शोक का वेदन है, वह अज्ञान वेदन है। आत्मा स्वयं निर्विकार स्वरूप है, उसका तो अज्ञानी को पता ही नहीं है।

जब आत्मा ज्ञानी होता है, तब **'वेदत सरूप निज, भैदत भरम कौ'** -अपने आनन्दस्वरूप का वेदन करता है, अनुभव करता है और राग का वेदन मेरा है- ऐसी भ्रमणा का नाश होता है। यह धर्म की कला और यही धर्म की रीति है।

'महापरचंडमति' अत्यन्त तीव्र बुद्धि को सुशोभित करनेवाले पूर्ण रस से भरे अनुभव के अभ्यास से परमात्मा का प्रकाश करता है। तब सूर्य के उदय से नष्ट हुए अन्धकार के समान कर्म के कर्त्तापने का विपरीतभाव हृदय में नहीं रहता। मति और श्रुतज्ञान स्वसन्मुख होकर अनुभव होने पर मति-श्रुतज्ञान का प्रचण्ड तेज प्रकट होने से राग की एकता का अन्धकार मिट जाता है और जो अखण्ड अतीन्द्रिय आनन्द का रस है, उसको वेदन करता हुआ मतिज्ञान अनुभव के अभ्यास द्वारा परम स्वभाव का प्रकाश करता है। मैं परमात्मा हूँ ऐसा प्रकाश होता है। **'अनुभव अभ्यासि परगासत परम कौ'** जो अनादि काल से स्वरूप के अस्तित्व के भान बिना राग और विकल्प के अस्तित्व को ही अपना कर्त्तव्य मानता हुआ अन्धकार में पड़ा था। वह अब मति-श्रुतज्ञान के तेज के बल से अपने अनुभव के अभ्यास के द्वारा परमात्मा की शक्ति का प्रकाश सुशोभित करता है।

कितनी सरल भाषा में मूल बात कर दी है। शुद्ध विज्ञानघन ऐसे परम स्वरूप को राग से भिन्न होकर प्रकाशित करता है। राग से भिन्न होकर अपने परम स्वरूप का अनुभव करना ही सम्यग्ज्ञान और विवेक है।

'ताहि समै घट मैं न रहै विपरीतभाव'- जब विकल्प से भिन्न अपने परमात्म स्वरूप का भान होता है, उसी समय विपरीत भाव अर्थात् राग की

एकता बुद्धि अपने भाव में नहीं रहती। जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है; उसी प्रकार अनुभव के अभ्यास द्वारा ज्ञानसूर्य का उदय होने पर कर्म के कर्त्तापने का विपरीतभाव हृदय में नहीं रहता है, नष्ट हो जाता है।

जिस समय राग और कर्म की बुद्धि का नाश होकर आत्मस्वभाव की बुद्धि होती है, वहाँ राग की एकता का भ्रम नहीं रहता है। प्रत्येक गाथा में भिन्न-भिन्न भाषा में भिन्न-भिन्न भाव की स्पष्टता है। साधारण लोगों को सब एक जैसा लगता है; परन्तु एक नहीं है, अनेक प्रकार की स्पष्टता है।

'ऐसी दशा आवै जब साधक कहावै तब' आत्मा साधक कब कहलाता है? कि जब ऊपर कही, वैसी दशा प्रकट होती है; तब वह आत्मा का साधक कहलाता है। चौथे गुणस्थान से ही साधक कहलाता है। राग की एकता तोड़कर स्वभाव की एकता को साधता हुआ परमात्मा को साधता हुआ साधक पौद्गलिक कर्मों को किस प्रकार करे?

धर्मी जीव पुद्गल को और राग को कैसे करे? सूर्योदय हो, वहाँ अन्धकार कैसे रहे? उसी प्रकार चैतन्यप्रकाश के तेज की क्रिया को करता हुआ धर्मी राग की एकता के अन्धकार को कैसे रखे?

जो अनादि से विकार का साधक था, वह अब आत्मस्वभाव का साधक हुआ; उसी का नाम धर्म है। इस मार्ग जाने की यह विधि है- ऐसा पहले समझे तो उसको अन्तर्मुख होने का प्रयोग करने का अवसर आता है; परन्तु यदि समझ ही मिथ्या होवे तो अन्तर में उतरने का - आत्मानुभव का सच्चा प्रयत्न होता ही नहीं है।

देखो न! 'पहले व्यवहार होता है, फिर निश्चय होता है' - ऐसा उल्टा प्रचार (अभी) चलता है..... जैसे सोना और पत्थर साथ में है, उसमें से सोना भिन्न होता है, वह स्वयं से होता है; पत्थर साधक नहीं है। उसी प्रकार राग से ज्ञान नहीं होता। राग तो अन्धकार है। अन्धकार में बैठने से उजाला नहीं होता। राग से धर्म का साधन नहीं होता। शास्त्रों में व्यवहार से राग को वीतरागता का साधन कहा है; परन्तु व्यवहार तो अन्यथा कथन करता है।

वस्तुतः राग वीतरागता का कारण नहीं है। पण्डित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में एकदम स्पष्ट किया है कि 'व्यवहार है अवश्य; परन्तु उसकी श्रद्धा करना योग्य नहीं है।'

भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है। उसमें विकल्प-मात्र का अभाव है- ऐसा जिसको भान होता है, वह ज्ञानी पौद्गलिक कर्मों का कर्त्ता होकर किस प्रकार करे? तथा राग का कर्त्ता होकर राग को किस प्रकार करे? वह तो अपनी ज्ञान की क्रिया को करता है, आनन्द की क्रिया को करता है; परन्तु राग की क्रिया को कैसे करे? (नहीं करता)

यहाँ कहते हैं कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा- ऐसा मानना रहने देना। जब तू व्यवहार का कर्त्तापना छोड़ेगा, तब तुझको साधकपना प्रकट होगा। व्यवहार साधन है और निश्चय उसका साध्य है- यह कथनमात्र कहा जाता है, वास्तव में ऐसा नहीं है। राग से आत्मा की शुद्धि बढ़ती ही नहीं, स्वभाव का आश्रय करते-करते शुद्धि बढ़ती है। छठवें गुणस्थान की शुद्धि सातवें गुणस्थान की शुद्धि का कारण है; परन्तु ऐसा लम्बा कथन नहीं करके छठवें में शुद्धि के साथ रहनेवाला राग किस जाति का होता है? वह बताकर उसे ही सातवें की शुद्धि का कारण कह दिया है; परन्तु वस्तुतः तो शुद्धि ही शुद्धि का कारण होती है॥3॥

आत्मा कर्म का कर्त्ता नहीं है, मात्र ज्ञातादृष्टा है।

जगमैं अनादिकौ अग्यानी कहै मेरौ कर्म,
करता मैं याकौ किरियाकौ प्रतिपाखी है।
अंतर सुमति भासी जोगसौं भयौ उदासी,
ममता मिटाइ परजाइ बुद्धि नाखी है।
निरभै सुभाव लीनौ अनुभौ के रस भीनौ,
कीनौ विवहारदृष्टि निहचैमैं राखी है।
भरम की डोरी तोरी धरमकौ भयौ धोरी,
परमसौं प्रीत जोरी करमकौ साखी है॥4॥

अर्थ:- संसार में अनादि काल का यह अज्ञानी जीव कहता है कि कर्म मेरा है, मैं इसका कर्त्ता हूँ और यह मेरा किया हुआ है। परन्तु जब अंतरंग में सम्यग्ज्ञान का उदय हुआ तब मन वचन के योगों से विरक्त हुआ, परपदार्थों से ममत्व हट गया, परजाय से अहंबुद्धि छूट गई, नि:शंक निजस्वभाव ग्रहण किया, अनुभव में मग्न हुआ, व्यवहार में है तो भी निश्चयपर श्रद्धा हुई, मिथ्यात्व का बन्धन टूट गया, आत्मधर्म का धारक हुआ, मुक्ति से मुहब्बत लगाई और कर्म का मात्र ज्ञाता-दृष्टा हुआ, कर्त्ता नहीं रहा ॥4 ॥

काव्य - 4 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि आत्मा कर्म का कर्त्ता नहीं, मात्र ज्ञाता-दृष्टा है।

जिसको वस्तु के स्वभाव का भान नहीं है, ज्ञान और आनन्द का धाम भगवान आत्मा जिसकी दृष्टि में नहीं आया है, उसको 'मैं ज्ञायक हूँ' -ऐसा तो भासता ही नहीं -इसकारण पुण्य-पाप के विकल्प ही भासते हैं और मैं उनका कर्त्ता हूँ, वह मेरे कार्य हैं ऐसा मानता है।

'जग में अनादि को अज्ञानी कहै मेरौ कर्म'- इसका अर्थ यह है कि ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वभाव में दृष्टि नहीं होने से विभाव पुण्य पाप के विकल्प- यही मैं और यही मेरा कार्य, ऐसा अज्ञानी मानता है। मेरे अस्तित्व में विकार होता है, इसलिए विकार ही मेरा कार्य है - ऐसा वह मानता है।

'करता मैं याकौ किरिया कौ प्रतिपाखी है' वर्तमान में जो पुण्य-पाप के विकल्प होते हैं, अज्ञानी को उनका ही भास है। उसको अपना मूलस्वरूप तो भासित नहीं होता, इसलिए वह अपने को इस पुण्य-पाप की क्रिया का ही कर्त्ता मानता है, उसको क्रिया का ही पक्षपात हैं। मैं चैतन्यमूर्ति हूँ -ऐसा पक्ष नहीं है। अनादि से जीव की यह दशा है। निगोद से लेकर नौंवे ग्रैवेयक तक जानेवाले द्रव्यलिंगी साधु को क्रिया का पक्षपात है, परन्तु मैं चैतन्यमूर्ति हूँ -ऐसा पक्षपात नहीं है।

जीव को अनादि से ज्ञान के पिण्ड और आनन्द के धाम (भगवान आत्मा) की दृष्टि तो है ही नहीं, पर्यायबुद्धि है; इसलिए जो प्रकट अंश है,

उतना ही मैं हूँ –ऐसा अज्ञानी मानता है। मैं तो विकल्प से रहित वस्तु हूँ –ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि तो हुई नहीं; इसकारण पर्याय में ही अहंबुद्धि धारण करके बैठा है। जो विकार की परिणति वर्त रही है, उसका मैं कर्त्ता हूँ और वह मेरा कार्य है –ऐसा ही उसको भासित होता है। उसे तो व्यवहार से धर्म होता है, पुण्य से पवित्रता होती है –ऐसा पक्ष बँध गया है।

चैतन्यमूर्ति महाप्रभु तो आनन्द और ज्ञान का सागर होने पर भी अनादि से अज्ञानी को उसकी रसिकता छूट गई है और राग की रसिकता हो गई है। इसका स्वभाव तो वीतराग स्वभाव अर्थात् ज्ञाता–दृष्टा स्वभाव है; परन्तु उसके सन्मुख दृष्टि नहीं करके राग की दृष्टि की है। इसकारण जहाँ हो, वहाँ 'यह कार्य मैंने किया है'–ऐसी कर्त्ताबुद्धि करता है। यह पुस्तक मैंने बनाई है –ऐसा करके उसका कर्त्ता होता है। जो विकल्प उठता है; उसकी सँभाल में उसका पक्षपात हो जाता है।

प्रथम दो पंक्तियों में अनादि के अज्ञानी के पक्षपात की सिद्धि की है। अब कहते हैं–**'अंतर सुमति भासी'**..जिसको अन्तर में सम्यग्ज्ञान का उदय हुआ है कि अरे! मैं तो पुण्य–पाप के विकल्प से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप वस्तु हूँ, विकल्प और राग तो मेल–मलिनता है। वे मेरी वस्तु नहीं हैं– ऐसा जानने पर अब वह जोग से उदास हुआ है। अर्थात् मन–वचन–काया के योगों से विरक्त हुआ है, राग से उदास हुआ है और उसने स्वभाव के आसन में दृष्टि लगाई है।

यह मार्ग कोई अलग है बापू! यह कोई कल्पित बात नहीं है। भाषा संक्षिप्त, परन्तु भाव बहुत गहरे–ऊँचे हैं।

अन्तर में चैतन्यसूर्य का उदय होने पर अन्तर में समता होती है और राग की ममता मिट जाती है। यह विकल्प मेरा है –ऐसी बुद्धि छूट जाती है। स्वयं विकल्प से उदास हो जाता है। द्रव्यबुद्धि होने पर पर्यायबुद्धि छूट जाती है।

'निरभै सुभाव लीनौ' अर्थात् नि:शंक गुण प्रकट हुआ। मूल श्लोक में–पाठ में 'अभय' शब्द है, उसका अर्थ निर्भय किया है। ज्ञानी को स्वभाव की नि:शंकता के कारण अब कोई भय नहीं रहा है। **क्रमशः**

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— तीर्थंकर की सभा में लाखों-करोड़ों जीव होते हैं, परन्तु उनमें तीर्थंकर का जीव तो कोई विरला ही होता है न ?

समाधान :— समवसरण-सभा में तीर्थंकर के जीव तो कुछेक ही होते हैं। सभी श्रोता तीर्थंकर के जीव थोड़े ही होते हैं ? हमेशा तीर्थंकर भगवान तो बिरले ही होते हैं। श्रोता बहुत होते हैं, परन्तु उनमें तीर्थंकर होनेवाले तो कोई-कोई होते हैं। तीर्थंकर का जीव अनमोल द्रव्य है, वे मार्ग-प्रकाशक हैं; उनकी वाणी द्वारा लाखों-करोड़ों जीव मार्ग प्राप्त करते हैं। जगत में सर्वोत्कृष्ट तो तीर्थंकर भगवान ही होते हैं, ऐसे सर्वोत्कृष्ट जीव बिरले ही होंगे न ? इन्द्र भी स्वर्गलोक छोड़कर भगवान के चरणों में आते हैं और उनकी महिमा करते हैं कि हमें पुण्य की महिमा नहीं, आपकी महिमा है। भगवान तो पुण्य और पवित्रता दोनों में सर्वोत्कृष्ट हैं। उनके आगे सब निस्तेज हैं। समस्त लोक में सर्वोत्कृष्ट हों तो तीर्थंकर भगवान हैं, इसलिए ऐसे द्रव्य अल्प होते हैं। उनकी वाणी ऐसी होती है कि जिसे सुनकर कितने ही जीव मार्ग प्राप्त कर लेते हैं। उनके अतिशय भी अलौकिक होते हैं, उनके दर्शनमात्र से जीवों के भाव पलट जाते हैं।

गौतमस्वामी ने मानस्तम्भव देखा और उनका मान गल गया। भगवान की अतिशयता चारों ओर फैली होती है। मान गला उसमें मानस्तम्भ कारण नहीं है, भगवान कारण हैं। भगवान का अतिशय चारों ओर होता है। यह मानस्तम्भ होता है, तब भगवान कैसे होंगे ! ऐसा आश्चर्य होने पर वहीं का वही मान गल गया और सारे आग्रह छूट गये। पहले तो अन्तर में इतने आग्रह थे कि मुझ जैसा कोई नहीं है, मैं तो सर्वज्ञ हूँ—ऐसा भीतर अभिमान था, परन्तु मानस्तम्भ को देखते ही वह मान एकदम गल गया और वहीं से पात्रता शुरु हो गयी। भगवान के अतिशय कोई अलग ही होते हैं। उनकी वाणी आदि सब अलौकिक होते हैं और वे जीवों को सहज ही पलटने का

कारण बनते हैं। यदि उपादान तैयार हो तो परिणति सहज ही पलट जाती है। गौतमस्वामी समवसरण में आगे बढ़ते हैं, वहाँ सम्यग्दर्शन, मुनिदशा, समस्त लब्धियाँ और अवधि-मन:पर्ययज्ञान प्रगट होते हैं; अन्तर में एकदम परिवर्तन हो जाता है और भगवान की वाणी खिरती है। भीतर पात्रता हो तो भगवान अति प्रबल निमित्त बनते हैं।

महाभाग्य से गुरुदेव का जन्म भरतक्षेत्र में हुआ। वर्तमान में उनके समान कोई दिखायी नहीं देता। उनकी वाणी आदि सब अलग ही प्रकार के थे; उनके दर्शनमात्र से जीव उल्लसित हो उठते थे और ऐसे भाव जागृत होते थे कि यह कोई विलक्षण पुरुष है ! क्रमशः

ज्ञानवर्धक - प्रतियोगिता

खोजोगे तो पाओगे, ज्ञानवान हो जाओगे।

निम्न प्रश्नों में संख्याओं की पूर्ति कीजिए।

प्रश्न 1. रत्नकरण्ड श्रावकाचारजी में कुल कितने श्लोक है ? ☐

प्रश्न 2. तत्त्वार्थसूत्रजी में कुल कितने सूत्र हैं ? ☐

प्रश्न 3. भक्तामरस्तोत्र में कुल कितने छन्द हैं ? ☐

प्रश्न 4. इष्टोपदेशजी में कुल कितने श्लोक हैं ? ☐

प्रश्न 5. समयसारजी में कुल कितनी गाथाऐं हैं ? ☐

नोट - निम्न प्रश्नों के समाधान अग्रिम पत्रिका में प्रकाशित किये जायेंगे।
आप अपने उत्तर मंगलायतन whatapp पर कर सकते हैं
Mob. 9997996346 (अभिषेक शास्त्री)

नाम - ..... उम्र - .....
Mob. .....

आलेख

विद्यार्थी के षट् आवश्यक

प्रो. वीरसागर जैन, दिल्ली

वाचनं श्रवणं भक्त्या, स्मरणं पृच्छनं पुनः।
लेखनं पाठनञ्चापि, षट्कर्माणि दिने दिने॥

यह श्लोक मैंने स्वयं अपने प्रिय विद्यार्थियों के लिए लिखा है। इसमें विद्यार्थी के दैनिक षट् आवश्यक कर्म बताने का प्रयास किया गया है। शास्त्रों में श्रावक एवं श्रमण (साधु) के षट् आवश्यक कर्म बताये गये हैं और उनके नित्य अनिवार्यरूप से पालन करने की बारम्बार प्रेरणा भी दी गई है। यहाँ मैंने उसी तर्ज पर विद्यार्थी के षट् आवश्यक कर्मों का विधान बनाने का प्रयास किया है। मुझे विश्वास है कि जो विद्यार्थी इन षट् आवश्यक कर्मों का नित्य पालन करेगा, वह अवश्य ही उत्तम विद्यार्थी सिद्ध होगा, अतः सभी विद्यार्थियों को इन षट् आवश्यकों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। विद्यार्थी के षट् आवश्यक कर्म निम्नलिखित हैं—1. वाचन (अध्ययन), 2. श्रवण, 3. स्मरण, 4. पृच्छन, 5. लेखन और 6. पाठन।

मैंने प्रायः देखा है कि कुछ विद्यार्थी सुनते तो बहुत हैं, पर हमेशा केवल सुनते ही सुनते रहते हैं बस, कभी मूल ग्रन्थों को उठाकर आद्योपान्त पढ़ते नहीं हैं, जबकि पढ़ने से ही मूल विषयवस्तु सांगोपांग भलीभाँति समझ में आती है, मात्र दूसरों से सुनने से काम नहीं चलता। अतः उत्तम विद्यार्थी का प्रथम आवश्यक कर्म है कि वह नित्य कुछ क्रमबद्ध रीति से अध्ययन करे, शास्त्रों का निर्दोष वांचन करे। इससे विद्यार्थी में अनेक गुण विकसित होते हैं।

इसी प्रकार कुछ विद्यार्थी ऐसे होते हैं, जो पढ़ते तो हैं, पर हमेशा केवल पढ़ते ही पढ़ते रहते हैं, कभी किसी विद्वान को सुनते नहीं हैं, जबकि ज्ञानीजनों को सुनने से बहुत गहरा ज्ञान प्राप्त होता है, शास्त्रों में लिखित

शब्दों की गूढ़ता और व्यापकता का अनुमान विद्वान वक्ताओं को सुनने से ही लगता है। अत: उत्तम विद्यार्थी का यह भी एक आवश्यक कर्म है कि वह नित्य गुरुजनों के व्याख्यान आदि का श्रवण भी अवश्य करे। इससे भी विद्यार्थी में अनेक गुण विकसित होते हैं। तथा यह श्रवण भी यदि किसी एक ही वक्ता का न होकर अनेक विविध वक्ताओं का हो तो विशेष लाभदायक सिद्ध होता है। उससे अनाग्रही एवं समीक्षात्मक दृष्टि का विकास होता है।

कुछ विद्यार्थी पढ़ते भी हैं, सुनते भी हैं, पर कभी लक्षण, परिभाषा, भेदोपभेद, गाथा, श्लोक आदि कुछ कण्ठस्थ नहीं करते हैं। यह बहुत बड़ी कमी है। इसके कारण वे विषयवस्तु की ठीक से परीक्षा, तुलना आदि नहीं कर पाते हैं। पिछला पाठ याद रहे तभी अगला ठीक से समझ में आता है। अत: स्मरण करना, कण्ठस्थ करना भी उत्तम विद्यार्थी का एक दैनिक आवश्यक कर्म होना चाहिए।

कुछ विद्यार्थी पढ़ते भी हैं, सुनते भी हैं, कुछ-कुछ स्मरण भी करते हैं, पर कभी कुछ पूछते ही नहीं हैं। या तो वे बहुत संकोची होते हैं या विषय पर गहरा चिन्तन ही नहीं करते हैं। ऐसे ही शान्त, उदास भाव से सब कुछ पढ़ते-सुनते रहते हैं, उन्हें कभी कोई जिज्ञासा ही उत्पन्न नहीं होती। परन्तु इससे उनके अन्तर्मन की शल्य दूर नहीं होती। अत: संकोच छोड़कर सक्रिय होकर बारम्बार अनेक प्रश्न पूछना चाहिए। इससे विषय स्पष्ट होता है। कुछ विद्यार्थी कहते हैं कि हमें विषय समझ में आ गया। अत: हम कुछ नहीं पूछते; परन्तु गहराई से देखो तो ऐसा नहीं होता है कहीं-न-कहीं कुछ कमी रहती ही है, यदि वे गहराई से चिन्तन करें तो अवश्य कुछ जिज्ञासा उत्पन्न होती है। तथा यदि समझ में आ गया हो तब भी उसे यदि फिर से पूछा जाए तो विषय का विशेष स्पष्टीकरण होता है, अत: पूछना भी अवश्य चाहिए। हाँ, केवल किसी वक्ता की परीक्षा लेने की दुर्भावनावश कुछ नहीं पूछना चाहिए।

कुछ विद्यार्थी पढ़ते भी हैं, सुनते भी हैं, स्मरण भी करते हैं, पूछते भी हैं, पर कभी कुछ लिखते नहीं हैं, इसलिए उन्हें अपने ज्ञान का कच्चापन पता नहीं चलता है। किसी भी विषय को जब हम स्वयं लिखने बैठते हैं, तब हमें पता चलता है कि हम कितने गहरे पानी में हैं। अत: प्रतिदिन थोड़ा-बहुत लिखना भी अवश्य चाहिए। लिखने से हमारा ज्ञान सुव्यवस्थित होता है। अत: लेखन को भी उत्तम विद्यार्थी का एक आवश्यक कर्म समझना चाहिए। लेखन से तात्पर्य यहाँ कोई यूँ ही इधर-उधर से कुछ भी लिख लेना या सामान्य नोट्स बना लेना मात्र नहीं है, अपितु किसी शीर्षक से लेख, निबन्ध आदि व्यवस्थित रचना तैयार करना है। इसी से विद्या परिपक्व होती है।

कुछ विद्यार्थी पढ़ते भी हैं, सुनते भी हैं, स्मरण भी करते हैं, पूछते भी हैं, लिखते भी हैं, पर कभी कुछ दूसरों को पढ़ाते नहीं हैं, किन्तु पढ़ाना भी उत्तम विद्यार्थी का एक दैनिक आवश्यक कर्म है, क्योंकि पढ़ाने से विद्या बहुत वृद्धिंगत होती है। पढ़ाना पढ़ने का ही एक उत्तम प्रकार हैं— Teaching is the best way of learning. दूसरों को पढ़ाने से विषय पर पर्याप्त ऊहापोह होती है और उससे विषय का हर पक्ष भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है, उसमें कहीं कोई शंका शेष नहीं रहती। अत. उत्तम विद्यार्थी को प्रतिदिन थोड़ी देर दूसरों को पढ़ाना भी अवश्य चाहिए। पढ़ाने के लिए यदि अन्य कोई न मिले तो अपने ही मित्रों या परिवारजनों को पढ़ाना चाहिए, पर पढ़ाना अवश्य चाहिए। इससे अनेकानेक लाभ होते हैं।

इस प्रकार मेरा अनुभव है कि जो विद्यार्थी उक्त षट् आवश्यक कर्मों का नित्य सेवन करेगा वह निश्चय ही उच्च कोटि का विद्वान बनेगा और भलीभाँति स्व एवं पर दोनों का हित सम्पादन करेगा। ऐसा विद्यार्थी जगत में मंगलस्वरूप होगा, त्रिलोकपूज्य बनेगा। ऐसे विद्यार्थी को मेरा भी विनम्र प्रणाम हो। ●

शुरुआत एक रुपया से

– दिव्यांश जैन, अलवर

संघर्षों की राह में बढ़ते हुए बात ई. सं. 1905 की है, जब क्षुल्लक गणेषप्रसादजी वर्णी को न्याय शास्त्र पढ़ने की ललक जगी। तब वे बनारस के 'क्वींस कॉलेज' के प्रसिद्ध नैयायिक विद्वान के पास गए और वहाँ उनके चरणों में एक रुपया रखते हुए निवेदन किया कि 'आप मुझे न्याय शास्त्र का अध्ययन करावें।'

तब उन नैयायिक विद्वान ने प्रश्न किया कि 'क्या तुम ब्राह्मण हो?'

तो वर्णीजी ने सहज ही उत्तर दिया – ' न तो मैं ब्राह्मण हूँ और नही मैं क्षत्रिय हूँ; मैं तो जैन अनुयायी वैश्य हूँ। '

इतना सुनते ही वे नैयायिक विद्वान भड़क उठे। अध्यापन की बात तो दूर, वर्णीजी को नास्तिक तक कहने लगे और उनका अपमान कर वहाँ से वापिस भेज दिया।

वे बहुत दुःखी हुए; किन्तु इस तिरस्कार को पुरस्कार मानते हुए पुनः गुरु की खोज में निकल पड़े। अन्ततः एक श्वेताम्बर विद्यालय में न्याय शास्त्र का अध्ययन किया; परन्तु उनके अन्तरंग में दिगम्बरत्व अपनी गहरी पैठ जमा चुका था। जिसके कारण उन्होंने यह निर्णय किया कि बनारस में ही दिगम्बर विद्यालय की स्थापना हो।

इस निमित्त उन्होंने उस ही एक रुपया, जिसे वे उन नैयायिक विद्वान के चरणों में भेंट करने वाले थे, उससे 64 पोस्टकार्ड खरीदे और समाज के 64 प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भेजे।

इस प्रकार उनके अनेक प्रयासों के फलस्वरूप ई. स. 1906 में बनारस में ही स्याद्वाद विद्यालय की स्थापना हुई।

वर्णीजी उस स्याद्वाद विद्यालय के संस्थापक होने के साथ–साथ उसके प्रथम विद्यार्थी भी रहे।

"जिस प्रकार–उसी प्रकार" में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– स्वच्छ दर्पण के सामने उपस्थित अनेक पदार्थों का मात्र आकार दिखाई देता है, वे पदार्थ किंचित मात्र भी प्रवेश पाते नहीं है, दर्पण उनको नहीं करता है।

उसी प्रकार– चेतन दर्पण के समाने उपस्थित अनेक पदार्थों का आकार झलकता है, पदार्थ आत्मा में प्रवेश कर नहीं सकते तथा आत्मा पदार्थों को स्पर्श नहीं कर सकती। अतः उनमें अच्छे–बुरे की कल्पना अथवा राग–द्वेष करना अपने को आकुलित करना है।

जिस प्रकार– लौकिक में बिना समझे कोई कार्य करना उत्तम फल का देनेवाला नहीं।

उसी प्रकार– आध्यात्मिक क्षेत्र में बिना समझे कोई भी कार्य करना उत्तम फल का देनेवाला नहीं है, पंच परमेष्ठियों के स्वरूप को समझे बिना उनकी सच्ची भक्ति, जाप आदि नहीं होते हैं।

जिस प्रकार– सिद्ध के परद्रव्यों का सम्बन्ध नहीं है।

उसी प्रकार– मेरे भी द्रव्यदृष्टि से उपाधिभाव नहीं है। भगवान के व्यवहार रत्नत्रय नहीं है, इसलिए निश्चय से मेरे भी वे परिणाम नहीं है। जितना सिद्ध में रहा, वह मेरा स्वरूप और जो सिद्ध से निकल गया, वह मेरा स्वरूप नहीं है।

जिस प्रकार– दर्पण में प्रतिबिम्ब देखते ही शरीर का ख्याल आता है।

उसी प्रकार– सिद्ध का ध्यान करने पर अपने स्वरूप का ख्याल आता है। इसलिए सिद्ध प्रतिबिम्ब समान है।

जिस प्रकार– मानसरोवर जैसे सरोवरों में खिलनेवाली कमलनियों के साथ वहाँ रहने वाला राजहंस क्रीड़ायें करता रहता है।

उसी प्रकार– यह भगवान आत्मा स्वयं में ही जो शम–दम आदि गुणरूपी कमलिनी है, उनके साथ क्रीड़ा करता है। यहाँ आत्मा के द्रव्य स्वभाव को सरोवर, उसमें रहनेवाले गुणों का कमलिनी और वर्तमान निर्मल पर्याय को राजहंस के स्थान पर रखा गया है।

जिस प्रकार– मक्खन का घी होता है परन्तु घी का मक्खन नहीं होता।

उसी प्रकार– अरिहंत–सिद्ध बनते हैं लेकिन सिद्ध संसार में नहीं आते, परन्तु अनन्त काल पर्यन्त सिद्धरूप ही रहते है, ऐसे निष्पन्नता को प्राप्त सिद्ध भगवान को हमारा नमस्कार हो।

क्रमशः संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

आचार्य परिचय

आगर्भ दिगम्बर संत हुए महंत जिनसेनाचार्य हुए

जैन श्रमणों में जिनसेनाचार्य जैसे दिग्गज मुनियों की समता भी अग्रगण्य है तो जिन शासन के प्रति वात्सल्य की मूर्ति का परिचय भी अभूतपूर्व है।

आर्य जिनसेनाचार्य को आगर्भ दिगम्बर कहा जाता है, इसके पृष्ठभाग में देखें तो बड़ा आश्चर्य होता है; जिसने गर्भ से ही मानो निर्ग्रंथ मार्ग को स्वीकार कर लिया था। एक दिवस जब आप अपने मित्रों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे, तो जंगल से आते मुनियों को देख हृदय में वैराग्य उमड़ आया, अवस्था अल्पायु की ही थी, बाल्य लीला में नग्न ही क्रीड़ा करना आश्चर्य की बात नहीं है, परन्तु आप ज्ञान–बाल नहीं थे; उस अवस्था में ही निर्ग्रंथ दीक्षा लेकर मुनि बन गये, इस कारण आप जन्म से ही निर्ग्रंथ रहे सो आगर्भ दिगम्बर आप की उपाधि बन गयी।

आप वीरसेनाचार्य के शिष्य एवं राजा अमोघवर्ष के समय के साहित्य गमन के भास्कर प्रतीत हो रहे थे।

आपने भव्य जीवों पर करुणा करके जिनवाणी को शास्त्र में गूँथा और पार्श्वाभ्युदय, जयधवला टीका, एवं आदिपुराण (सर्ग 42 तक) जैसे अमर ग्रंथों की रचना आपके निमित्त से हुई।

वैसे वीरसेनाचार्य की जयधवला टीका आपने पूर्ण की अतः जयधवला टीका आपकी कही गयी। विद्वानों का मत है आपने मात्र 20 वर्ष की ही अवस्था में पार्श्वाभ्युदय ग्रंथ की रचना कर दी थी, जिससे ज्ञात होता है आप बहुत बड़े कवि, लेखक, दार्शनिक, वैयाकरण रहे हैं।

समाचार-दर्शन

कक्षा 12वीं के छात्रों का रहा शत-प्रतिशत परीक्षा परिणाम

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के सत्र 2022-23 में कक्षा 12वीं के छात्रों ने शत-प्रतिशत अंक प्राप्त करके मङ्गलायतन परिवार और अपने माता-पिता का गौरव बढ़ाया है।

इस सत्र में कुल सात मङ्गलार्थी छात्रों ने परीक्षा देकर सफलता प्राप्त की जिसमें डी.पी.एस. स्कूल हाथरस में प्रथम स्थान प्राप्त करनेवाले मङ्गलार्थी अंश जैन (मौ) ने 89 प्रतिशत प्राप्त किये। द्वितीय स्थान अर्चित जैन और तृतीय स्थान उदित चौधरी ने प्राप्त किया। शेष सभी विद्यार्थियों ने भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णता प्राप्त की।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार सभी मङ्गलार्थियों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

जैनत्व बाल संस्कार शिविर सानन्द सम्पन्न

जबलपुर : श्री वीतराग विज्ञान मण्डल एवं अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन जबलपुर द्वारा लगाये गये 13वें जैनत्व बाल संस्कार आवासीय शिक्षण शिविर में तत्त्वज्ञान की धारा प्रवाहित की गयी।

जैन धर्म के सिद्धान्तों को समझने में और जीवन को सदाचारी बनाने में शिविर में देश के विभिन्न विद्वानों द्वारा अपना बहुमूल्य समय प्रदान किया गया।

शिविर में बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाश जैन, पण्डित राजेन्द्रकुमार जैन, डॉ. मनोजकुमार जैन, बालब्रह्मचारी श्रेणिक जैन, पण्डित राजेन्द्र शास्त्री खड़ैरी, पण्डित अरविन्द शास्त्री, पण्डित पुष्प शास्त्री, पण्डित सन्देश शास्त्री, मङ्गलार्थी अनुभव जैन सहित अनेक विद्वानों ने विद्यार्थियों को संस्कारित किया।

विशेष समागम

आदरणीया श्रीमती बीना जैन देहरादून

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के विद्यार्थियों के लिए देशभर के मूर्धन्य विद्वानों का विशिष्ट रूप से समागम मिलता रहता है। इसी शृंखला में 8 मई से 11 मई 2023 तक **आदरणीया श्रीमती बीना जैन देहरादून** ने पूरे मङ्गलायतन परिवार को द्रव्य-गुण-पर्याय और भेदविज्ञान जैसे विषयों

का सरल और प्रभावक शैली में मङ्गलार्थियों को जिनवाणी का रसास्वादन कराया। आप चारों ही अनुयोगों के गहरे अभ्यासी हैं। अत: स्वाभाविक ही आपके व्याख्यान में भेदविज्ञान का पुट सर्वोपरि होता है।

मङ्गलार्थियों की परम स्नेही बीनाजी द्वारा मङ्गलार्थियों के लिए भविष्य में विशेष अध्यापन की स्वीकृति प्रदान की गयी है। एतदर्थ मङ्गलायन परिवार सम्माननीया बीनाजी का हार्दिक अभिनन्दन करता है।

पण्डित (डॉ.) वीरसागर जैन, दिल्ली

तीर्थधाम मङ्गलायतन : देश-विदेश में ख्याति प्राप्त विद्वान आदरणीय डॉ. वीरसागर जैन दिल्ली का तीर्थधाम मङ्गलायतन में 17 मई से 19 मई तक विशेष समागम प्राप्त हुआ। जैनधर्म के प्राण अनेकान्त और स्याद्वाद के सिद्धान्त को आपने मङ्गलार्थियों को सिर्फ समझाया ही नहीं बल्कि स्याद्वाद को घटित करने की पद्धति से भी अवगत कराया। आपने मङ्गलार्थियों को वास्तविक विद्यार्थी जीवन की शिक्षा सिखाई एवं उन्हें जिनवाणी कण्ठ में बसाने की विशेष प्रेरणा भी प्रदान की है। अत: मङ्गलायतन परिवार आपका विशेष आभारी है।

मङ्गलायतन परिवार की ओर से पण्डित सुधीर शास्त्री ने अंगवस्त्र, शॉल और सत्साहित्य प्रदान करके आभार व्यक्त किया। आपके पुन: पुन: आते रहने की भावना भायी।

पण्डित ऋषभ शास्त्री, उस्मानपुर, दिल्ली

पण्डित ऋषभ शास्त्री, उस्मानपुर का विद्यार्थियों को लाभ प्राप्त हुआ, निर्माल्य के महत्त्व को आपने मङ्गलार्थी छात्रों को अपनी सरल और सरस शैली से अध्यापन कराया। साथ ही ग्वालियर शिविर के लिए मङ्गलार्थियों के साथ सानन्द यात्रा में भी अपना महत्त्वपूर्ण समय प्रदान किया। एतदर्थ मङ्गलायतन परिवार आपका धन्यवाद करता है।

वैराग्य समाचार

अलीगढ़ : श्री अखिलेश जैन की धर्मपत्नी श्रीमती नीलम जैन का 2-6-2023 को देहपरिवर्तन हो गया है।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

अग्रिम कार्यक्रम –

दशलक्षण पर्व हेतु आमन्त्रण

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन से अध्ययन कर चुके मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा प्रतिवर्ष दशलक्षण महापर्व पर भारतदेश के विभिन्न स्थानों पर जाकर धर्म प्रभावना की जाती है। इस वर्ष भी 19 सितम्बर से 29 सितम्बर तक दशलक्षण पर्व मनाये जा रहे हैं। अत: आपसे निवेदन है कि आप अपने नगर/मण्डल में मङ्गलार्थियों को पूजा-भक्ति-स्वाध्यायार्थ आमन्त्रित करना चाहते हैं तो हमें सूचित करें।

सम्पर्क :- पण्डित सुधीर जैन शास्त्री;

Mob. : 9756633800 Email : jainsudhir74@gmail.com

तीर्थधाम चिदायतन में भव्य वेदी शिलान्यास महोसव

तीर्थधाम चिदायतन : ऐतिहासिक अतिशयकारी पौराणिक तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर की पवित्रधरा पर, श्री शान्तिनाथ-अकम्पन-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हस्तिनापुर द्वारा तीर्थधाम चिदायतन का वेदी शिलान्यास महोत्सव, मंगलवार, 14 नवम्बर से गुरुवार, 16नवम्बर 2023 तक होने जा रहा है। इस भव्य शिलान्यास में पधारकर आप अपना जीवन धन्य करें।

सम्पर्क :- श्री नवनीत जैन, मेरठ, Mob. : 8171012049
श्री निखिल जैन, मेरठ, Mob. : 9319907799

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना अनवरत प्रवाहित

दसवीं पुस्तक की वाचना 6 जून 2023 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - आदरणीय बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं सहयोगी भाई-बहिनों तथा मङ्गलायतन परिवार को भी लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)	**षट्खण्डागम (धवलाजी)**	
रात्रि	07.30 से 08.30 बजे तक	मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय
	08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्च्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - tm@4321
youtube channel - theerthdham mangalayatan
के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना-प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** बीस वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे-भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम - **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आपको प्रतिमाह, कम से कम मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं। (सदस्यता फार्म पृष्ठ 34 पर है।)

भारत सरकार ने मङ्गलायतन को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80-G के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व-पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र सपरिवार पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन करें एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें - ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम ....

पता ....

.... पिन कोड ....

मोबाइल .... ई-मेल ....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की सदस्यता स्वीकार करता हूँ और मैं .... राशि जमा करवाऊँगा / दूँगा।

हस्ताक्षर

''चौथाई ग्रास दान भी अनुकरणीय''

ग्रासस्तदर्धमपि देयमथार्धमेव,
तस्यापि सन्ततमणुव्रतिना यथर्द्धिः।
इच्छानुसाररूपमिह कस्य कदात्र लोके,
द्रव्यं भविष्यति सदुत्तमदानहेतुः॥

अर्थात् गृहस्थियों को अपने धन के अनुसार एक ग्रास अथवा आधा ग्रास अथवा चौथाई ग्रास अवश्य ही दान देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि हमें ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जब मैं लखपति या करोड़पति हो जाऊँगा, तब दान दूँगा; बल्कि जितना धन हमारे पास है, उसी के अनुसार थोड़ा-बहुत दान अवश्य देना चाहिए। – आचार्य पद्मनन्दि : पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका, श्लोक 230

यह राशि आप निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं –

1. बैंक द्वारा

NAME	:	SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	RAILWAY ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	:	1825000100065332
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0001000
PAN NO.	:	AABTA0995P

UPI
BHIM UPI Payments Accepted at
SHRI ADINATH KUND KUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST
Account Number : 1825000100065332, IFSC Code: PUNB0001000

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/

3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

मङ्गलार्थियों की शौरीपुर-बटेश्वर यात्रा सानन्द सम्पन्न।

विश्वप्रसिद्ध ग्वालियर के गोपाचल-तीर्थक्षेत्र की यात्रा।

ग्वालियर के स्वर्णमन्दिर की यात्रा।

कक्षा 12वीं का रहा शत-प्रतिशत परीक्षा परिणाम

अंश जैन
89.2 प्रतिशत

अर्चित जैन
86.8 प्रतिशत

उदित चौधरी
85.2 प्रतिशत

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

'चलते-फिरते सिद्ध'

मुनि मानो 'चलते-फिरते सिद्ध' हों — ऐसी उनकी अद्‌भुत दशा है। मुक्ति सुन्दरी कहती है कि 'मैं ऐसे शुद्ध रत्नत्रय के साधक मुनिवरों का ही वरण करती हूँ।' ऐसे मोक्षमार्गी मुनिवर ही मुक्तिसुन्दरी के नाथ होते हैं। 'जय हो उन मुक्ति-सुन्दरी के नाथ की!'....

(आत्मधर्म (हिन्दी), क्रमाङ्क 130 से साभार)

जो वन-जंगल में बसते हैं और आत्मा के आनन्द का शोधन करके उसके वेदन में जीवन बिताते हैं—ऐसे सन्त मुनिराज कहते हैं कि अहो! हमें अपना चैतन्यपद ही परमप्रिय है।

(आत्मवैभव (गुजराती), पृष्ठ 310)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा मङ्गलायतन मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. जयन्तीलाल जैन,मङ्गलायतन वि०वि०

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com